



ध्यान दें:

19

महावाक्य तात्पर्य विचार

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ होते हैं। इनमें परमपुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्ष तथा उसके उपायों का ज्ञान अलौकिक उपायों के द्वारा ही होता है। वहाँ पर ज्ञान में परमप्रमाण वेद ही होते हैं। ऋग्यजुसामार्थव भेद से वेद चार प्रकार के होते हैं। इन वेदों के द्वारा ही मोक्ष को जाना जाता है। वह मोक्ष तथा ब्रह्म के ऐक्य के ज्ञान होने पर ही सम्भव होता है उसके अलावा ओर कोई प्रकार नहीं है। यह ऐक्य का ज्ञान वेदों के द्वारा ही होता है। उस प्रकार का ऐक्य चार प्रकार के वाक्यों के द्वारा ही प्रतिपादित होता है। वो चार वाक्य महावाक्य कहलाते हैं। चारों वेदों में चार महावाक्य हैं ऋग्वेद में “प्रज्ञानं ब्रह्म” (3/1/3) तब यह महावाक्य है। यजुर्वेद में “अहं ब्रह्मास्मि” (1/4/10) महावाक्य है। सामवेद में “तत्त्वमसि” यह महावाक्य है तथा अथर्ववेद में “अयमात्मा ब्रह्म” यह महावाक्य सुशोभित है। इस पाठ में ऋग्वेदीय तथा यजुर्वेदीय महावाक्यों का विचार किया जा रहा है।



उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- वेदान्तों का गुह्यतत्व क्या है यह जानने में;
- ब्रह्म शब्द का क्या अर्थ है यह जानने में;
- मन किस प्रकार से इन्द्रिय होता है इसका परिचय प्राप्त करने में;
- शब्द किस प्रकार से अपरोक्ष का जनक होता है जानने में;
- ब्रह्म को जानने वाला गुरु किस प्रकार का होता है इस बारे में जानने में;
- तात्पर्य निर्णय के लिए छः प्रकार के लिङ्गों को जानने में;
- अज्ञान किस प्रकार होता है जानने में;
- बृहदारण्यकपिनिषद् में क्या महावाक्य है जानने में;

महावाक्य तात्पर्य विचार



ध्यान दें:

19.1) पाठविमर्श

ब्रह्म ही सभी वेदान्तों का तात्पर्य है। वेदान्त उपनिषद् को कहते हैं। वेदान्त को अन्तिम निष्कर्ष रूप सिद्धान्त जहाँ होता है वह वेदान्त नाम से जाना जाता है। उपनिषद् इस शब्द का रहस्य यह अर्थ है। उपनिषद् अध्यात्मविद्या के रहस्य का प्रतिपादन करते हैं। और उपनिषद् शब्द का प्रसिद्ध अर्थ है ब्रह्मविद्या। यह अर्थ इस प्रकार से उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति के द्वारा प्राप्त होता है। सद् धातु के तीन अर्थ होते हैं। सबसे प्रथम विशरण इसे विनाश भी कहते हैं। दूसरा है गति इसका ज्ञान (विद्या) अर्थ होता है। तीसरा है अवसाद इसका शैथिल्य अर्थ होता है। यहाँ पर सद् धातु का गति परक अर्थ स्वीकार करते हैं तो उपनिषद् शब्द का ब्रह्मविद्या यह अर्थ होता है। उपनिषद् इस उपसर्ग से सामीप्य को समझा जाता है। उस उपनिषद् से समीप आत्मा सूचित होती है। नि अर्थात् निश्चय रूप से जो विद्या ब्रह्म की जीवात्मा को प्राप्त करवाती है वह ब्रह्मविद्या। इसलिए शङ्कराचार्य ने कठोपनिषद् के भाष्य में कहा की **“पूर्वोक्तविशेषणान्मुमुक्षून् वा परं ब्रह्म गमयति इति ब्रह्मगमयितृत्वेन योगात् ब्रह्मविद्या उपनिषत्”** इति। दश उपनिषद् प्रसिद्ध हैं ईशोपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद्। जिसमें ऋग्वेदीय ऐतरेयोपनिषद् में **“प्रज्ञानं ब्रह्म”** (3/1/3) इस प्रकार का महावाक्य है। महावाक्य से तात्पर्य है अखण्डार्थ प्रतिपादक वाक्य। जीव तथा ब्रह्म का अभेदार्थ जिन उपनिषदों के द्वारा सूचित होता है वे महावाक्य कहलाते हैं। महान् अर्थ का प्रतिपादन करने से महावाक्य कहलाते हैं। जीव तथा ब्रह्म में अभेदार्थ ही यहाँ पर महान् अर्थ है। वाक्यों के तात्पर्य के निर्णय के लिए मीमांसाशास्त्र में छः प्रकार के तात्पर्यग्राहकलिङ्गों का प्रयोग किया है। उन तात्पर्य ग्राहकलिङ्गों के द्वारा ही वेदान्तवाक्यों के तात्पर्य का ग्रहण होता है। इस महावाक्यों के तात्पर्य के लिए तात्पर्यलिङ्गों का सबसे पहले विचार किया जा रहा है।

19.2) लिङ्गों का परिचय

उपक्रम संहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद तथा उपपत्ति इस प्रकार से ये लिङ्ग होते हैं। आदि में जो कहा गया है अन्त में भी उसका कथन उपक्रम तथा उपसंहार कहलाता है। आदि में तथा अन्त में एक ही विषय कहा गया है इस प्रकार से एक ही वह एक विषय कहलाता है तो वह ही प्रकार का प्रतिपाद्य विषय होता है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् में पिता उद्दालक पुत्र श्वेतकेतु से कहता है कि **“सदेव सोम्य इदम् अग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्”** (6/2/1) इति। (वह ही सोम्य सबसे पहले था तथा एक ही अद्वितीय है) इस प्रकार से आरम्भ में ब्रह्म का उपक्रम कहकर अन्त में जो **“ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो”** (6/8/7) इति। इस प्रकार से उसका अन्त में उपसंहार किया गया है।

दूसरा लिङ्ग है अभ्यास। प्रकरण में प्रतिपाद्य विषय बार बार प्रतिपादन करना अभ्यास कहलाता है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में **“तत्त्वमसि”** इस वाक्य को नौ बार पढ़ा गया है। ब्रह्म ही प्रतिपाद्य वस्तु है इस प्रकार से सूचित करने के लिए ही नौ बार कथन किया गया है।

तृतीय लिङ्ग है अपूर्वता। प्रकरण में जिस वस्तु का प्रतिपादन किया जाता है उसी वस्तु का प्रमाणान्तर से अविषयीकरण करना अपूर्वता कहलाता है। जैसे- बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है- **“तन्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि”** (3/9/26) इति। (उस उपनिषद् के द्वारा प्रतिपाद्य पुरुष के विषय में पूछ रहा हूँ) यहाँ इसप्रकार की श्रुतियों के द्वारा उपनिषद् मात्रवेद्यत्व प्रतिपादन से ब्रह्म का अपूर्वत्व कहा गया है।

चौथा लिङ्ग है फल। प्रकरण के प्रतिपाद्य विषय जिन स्थलों में होता है उन स्थलों में श्रूयमाण प्रयोजन फल कहलाता है। जैसे- छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में कहा गया है “आचार्यवान् पुरुषो वेद, तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये” (6/14/2) इति। इस श्रुति में अद्वितीय ब्रह्मज्ञान का अद्वितीय ब्रह्मप्राप्ति परक ही फल बताया है। इस प्रकार से “ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति” (मुण्डकोपनिषत् 3.2.9) “तरति शोकम् आत्मवित्” (छान्दोग्योपनिषत् 7.1.3)। इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व का फल कहा गया है।

पाँचवां लिङ्ग है अर्थवाद। प्रकरण में प्रतिपाद्य वस्तु की प्रतिपाद्य स्थल में प्रशंसा करना अर्थवाद कहलाता है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है - “उत तमादेशम् अप्राक्ष्यः येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्” (6/1/3)। इस श्रुति में अद्वितीय ब्रह्म की प्रशंसा की गई है।

छठा लिङ्ग है उपपत्ति प्रकरण में जिन स्थलों में जो अर्थ प्रतिपादित किया गया है उन स्थलों में उस अर्थ के साधन में श्रूयमाण युक्ति उत्पत्ति कहलाती है। प्रपञ्चरूप कार्य का मूल कारण ब्रह्म होता है। इसलिए ब्रह्म के बिना प्रपञ्च की अतिरिक्त कोई भी सत्ता नहीं है इस प्रकार से उपनिषद् में मृत्तिका आदि दृष्टान्तों के द्वारा कहा गया है। भले ही अज्ञानवश पदार्थों की नाना रूपों के द्वारा प्रतीति होती है। फिर भी सब कुछ यह अद्वितीय एक ब्रह्म ही उपनिषद् में कहा गया है। अद्वितीयवस्तु ब्रह्म के साधन में विकारार्थ पद की वाङ्मात्रत्व विषय में युक्ति है - यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्” (छान्दोग्योपनिषत् 6.1.4) इस श्रुति का अर्थ मृत्पिण्ड के द्वारा निर्मित घटादि होते हैं। ये घटादि वस्तुतः मृत्तिका ही होते हैं। फिर भी गृह घटादि शब्दों के द्वारा कहे जाते हैं। वहाँ केवल मृत्तिका ही सत्य है।

19.3) प्रज्ञानं ब्रह्म

यह सबकुछ ब्रह्म ही है। तथा ये सब नाम भी ब्रह्म के ही हैं। इसलिए ऐतरेयोपनिषद् में कहा है “एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानि इतराणि चेताराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि चाशवा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म” (3/1/1) इति।

ब्रह्म का यह जगत विवर्तरूप है। इसलिए तत्त्वतः इसे अन्यथा प्रथा विवर्त कहा जाता है। जो दो सत्ता आपस में भिन्न होती है उनमें विवर्त भाव होता है। जैसे ब्रह्म की पारमार्थिकी सत्ता तथा जगत की व्यावहारिकी सत्ता। इसलिए ब्रह्म का विवर्तरूप ही यह जगत होता है। सिद्धान्तलेश सङ्ग्रह में कहा गया है कि “ब्रह्म का उपादानत्व अद्विती यकूटस्थ चैतन्य स्वरूप के परमाणुओं की तरह ही आरम्भकत्व रूप वाले होते हैं, न की प्रकृति के समान परिणामित्व रूप वाले होते हैं। लेकिन अविद्या के द्वारा विद्यादि प्रपञ्च रूप से विवर्त मानत्व लक्षण इनका हो जाता है। वस्तुतः तत्समसत्ता का अन्यथाभाव परिणाम होता है। इसलिए वह तदसमसत्ता विवर्त इस प्रकार से कहलाता है। कारणसलक्षण अन्यथा भाव तथा परिणाम जो होते हैं इनसे विलक्षण विवर्त होता है। कारणभिन्न कार्य का परिणाम होता है। उसके भेद के बिना ही उसके अतिरिक्त दुवर्चनीय कार्य विवर्त कहलाता है, इस प्रकार से यह विवर्त तथा परिणाम में विवेक होता है।” सभी शरीरों में स्थित प्राण प्रज्ञारूपी आत्मा होती है। सबसे पहले शरीर प्रजापति तथा आत्मा उत्पन्न हुई है। इन्द्र अग्नि आदि सभी देव ब्रह्म के ही विवर्त रूप होते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, तथा आकाश ये सभी पञ्चमहाभूत उससे ही उत्पन्न होते हैं। क्षुद्रजीवों के साथ उनके कारण सर्पादि बीज, अण्डों से पक्षी आदि, जरायु से



ध्यान दें:

महावाक्य तात्पर्य विचार



ध्यान दें:

मनुष्य आदि उत्पन्न हुए, स्वेद से जूँ मच्छरादि उत्पन्न हुए, तथा उद्भिज वृक्षादि, और अश्व गायें हाथी आदि ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं। यह सब उस प्रज्ञा के ही नेत्र हैं क्योंकि प्रज्ञा के द्वारा ही इनको ले जाया जाता है। यहाँ पर शङ्कराचार्य ने यह कहा है कि “सब कुछ उस ब्रह्मरूपी प्रज्ञा का ही नेत्र है। प्रज्ञा प्रज्ञा है और वह ब्रह्म ही है जिसके द्वारा ले जाया जाता है वह नेत्र होता है। प्रज्ञानब्रह्म में उत्पत्ति स्थिति तथा लय कालों में प्रतिष्ठित प्रज्ञा अर्थ होता है। यह प्रज्ञानेत्र रूप पूर्ववत् होता है। यह लोक प्रज्ञा चक्षु है तथा इस जगत की प्रतिष्ठा प्रज्ञा ही है। इसलिए वह प्रज्ञान ब्रह्म होता है।” सङ्कल्पविकल्पात्मक अन्तःकरण चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा निकलकर के घटादिविषय देश की और जाकर के घटादिविषयाकार के द्वारा जब परिणमित होता है तब वह परिणामविशेष वेदान्त वृत्ति कहलाती है।

19.3.1) प्रज्ञानशब्दार्थ

पुरुष चक्षु द्वारा निर्गत जिस अन्तःकरणवृत्युपहित चैतन्य से दर्शन योग्य रूपादि को देखता है, वैसे ही श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा निर्गत जिस अन्तःकरणवृत्युपहित चैतन्य से शब्दों का श्रवण होता है। वाक् इन्द्रिय के द्वारा निर्गत जिस अन्तःकरणवृत्युपहित चैतन्य से शब्दों का व्यवहार होता है। घ्राणेन्द्रिय के द्वारा निर्गत जिस अन्तःकरणवृत्युपहितचैतन्य के द्वारा गन्धसमूहों को सूँघता है। रसनेन्द्रिय के द्वारा निर्गत जिस अन्तःकरणवृत्युपहित चैतन्य से स्वाद तथा अस्वाद का ज्ञान होता है। उसी प्रकार यहाँ उक्त तथा अनुक्त समस्त इन्द्रिय अन्तःकरणवृत्तिभेद के द्वारा उपलक्षित चैतन्य ही प्रज्ञान होता है। इसलिए पञ्चदशीकार विद्यारण्यस्वामी ने महावाक्यविवेक प्रकरण में कहा है कि-

“येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च।

स्वादस्वादू च विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम्॥” (5/1) इति।

इस बात को कौषीतकी उपनिषद् में भी कहा है।

प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि नामानि आप्नोति।

प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्वाणि रूपाणि आप्नोति” (3/6) इति।

बृहदारण्यकोपनिषद् मे कहा गया है कि “मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति हृदयेन हि रूपाणि जानाति” (1/5/3) यहाँ पर मन आदि शब्द के द्वारा चैतन्य रूप प्रज्ञान को ही कहा है। मनादि प्रज्ञान के नामधेय होते हैं। इसलिए यह ऐतरेय उपनिषद् में कहा गया है- “यदेतद्बुद्धयं मनश्चौतत संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति” (3/1/2) इति।

19.3.2) ब्रह्मशब्दार्थ

इस प्रकार से प्रज्ञान शब्द का अर्थ कहकर के विद्यारण्य स्वामी ने पञ्चदशी मे ब्रह्म शब्द का अर्थ इस प्रकार से कहा है-

“चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु।

चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्ममय्यपि॥” (5/2) इति।

जगत का जन्म स्थिति तथ लय का कारण जो चैतन्य उत्तमदेवादि, मध्यम मनुष्यादि में तथा अधम अश्वदि में, पृथ्वी आदि में होता है वह ब्रह्म होता है। सभी में चैतन्य स्वरूप ब्रह्म ही अनुस्यूत होता है। सभी जगह अवस्थित प्रज्ञान ब्रह्म ही है। ब्रह्म के जगत् जन्मादिकारणत्व में श्रुति प्रमाण होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में इस विषय में यह श्रुति है की



ध्यान दें:

“यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।

यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति। ” (3/1) इति।

इसलिए जाना जाता है कि जो ब्रह्म में जगत् जन्मादि कारणत्व होता है। यहाँ पर जगत् पद के द्वारा सभी कार्यजात विविक्षित होता है। अखिलकार्यजात का एक ही कारण अद्वितीय ब्रह्म है। कारणपद के द्वारा ब्रह्म में कर्तृत्व होता है इस प्रकार से यह कहा गया है। कार्य के प्रति जो उपादान कारण है उन कारणों का जिसमें अपरोक्ष ज्ञान होता है तथा कार्य करने की इच्छा एवं कार्य करणानुकूल प्रयत्न जिसमें होता है वह कर्ता है।

परमेश्वर ब्रह्म में यह सब है। इसलिए परमेश्वर ब्रह्म कर्तृत्व ही होता है। वेदान्तपरिभाषा में धर्मराजाध्वरीन्द्र के द्वारा कहा गया है। “कर्तृत्वं च तत्तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वम्”। यहाँ पर ब्रह्म के नौ तटस्थलक्षण बताए हैं- (वेदान्त परिभाषा में कहा गया है- तटस्थलक्षणं तु यावल्लक्ष्यकालमनवस्थितत्वे सति यद्व्यावर्तकं तदेव यथा गन्धवत्त्वं पृथ्वीलक्षणम्” इति।) कह सकते हैं। वो लक्षण है

1. जगज्जन्मानुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्व
2. जगत्स्थित्यनुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्व
3. जगल्लयानुकूलापरोक्षज्ञानवत्त्व
4. जगज्जन्मानुकूलचिकीर्षावत्त्व
5. जगत्स्थित्यनुकूलचिकीर्षावत्त्व
6. जगल्लयानुकूलचिकीर्षावत्त्व
7. जगज्जन्मानुकूलप्रयत्नवत्त्व
8. जगत्स्थित्यनुकूलप्रयत्नवत्त्व
9. जगल्लयानुकूलप्रयत्नवत्त्व

इस प्रकार से ब्रह्म शब्दार्थ कहकर के यजुर्वेद के बृहदारण्यकोपनिषद् में महावाक्यों का विचार किया गया है।

19.4) अहं ब्रह्मास्मि

बृहदारण्यकोपनिषद् में इसको कहा गया है - “अहं ब्रह्मास्मि” (1/4/10)। विद्या प्राप्ति के लिए इष्टदेव की आराधना जिस प्रकार से की जाती है वैसे ही गुरु की आराधना भी विद्या प्राप्ति के लिए की जाती है। यहाँ पर शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का यथार्थ विद्या का बोध होता है। उस प्रकार के यथार्थ बोध के लिए निर्विघ्न रूप से निष्ठापूर्वक शास्त्राध्ययन अपेक्षित है। निर्मल चित्तवाले पुरुष की ही शास्त्र में श्रद्धा होती है। इष्ट देव की कृपा के बिना चित्त कभी भी निर्मल नहीं होता है। केवल देव के अनुग्रह से कभी भी शास्त्र का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। यब तक गुरु की कृपा नहीं होती है। तब तक शास्त्र का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। इसलिए गुरु की आराधना करना चाहिए। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है की

“यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।

तस्य ह्येते कथितार्थाः प्रकाशयन्ते महात्मनः॥” (6/23) इति।

महावाक्य तात्पर्य विचार



ध्यान दें:

पुराणकारों के द्वारा भी कहा गया है।

“गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः।
उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः॥” इति।

गुरु शब्द ब्रह्म वर्ण त्रयात्म होता है। गकार का का सिद्धिदातृत्व अर्थ है। रकार का पापदाहकत्व अर्थ है, उकार का पालकत्व अर्थ है। गुरु शिष्य का पापक्षालन करता है। शङ्कराचार्य के द्वारा उपदेशसाहस्री में कहा गया है।

“विद्यया तारिताः स्मो यैर्जन्ममृत्युमहोदधिम्।
सर्वज्ञेभ्यो नमस्तेभ्यो गुरुभ्योऽज्ञानसङ्कुलम्॥
वेदान्तवाक्यपुष्पेभ्यो ज्ञानामृतमधूत्तमम्।
उज्जहारालिवैद्यो नस्तस्मै सद्गुरवे नमः॥” (203) इति।

गुरु श्रद्धावान् अन्तेवासी के हृदय में ज्ञान का दीपक जलाकर के अज्ञान का नाश करता है। जो अपनी बुद्धि के द्वारा परमात्मा को जानना चाहता है वह भी अज्ञान में ही डूबता रहता है। शास्त्रपारदर्शी को भी स्वतन्त्रता से ब्रह्मज्ञान का अन्वेषण स्वयं नहीं करना चाहिए। यहाँ पर केवल गुरु प्रदत्त ज्ञान ही अवधारणात्मक होता है। फिर गुरु के महात्म्य के विषय में कहा है।

“गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं तत्त्वं तस्मात् गुरुमुपाश्रयेत्” इति।

इसलिए गुरु के पास में उपदेश प्राप्त करने के लिए शिष्य को गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। गुरु निर्मल चित्त शमदमादि सम्पन्न शिष्य के लिए ब्रह्म विद्या का उपदेश देता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है। -

“तस्मै स विद्वान् उपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताया
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥” (1/1/3) इति।

शमदमादि से तात्पर्य है शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान तथा श्रद्धा यह छः जब भूख अत्यन्त तीव्र होती है तब भोजन को छोड़कर के अन्य कुछ भी मन के अच्छा नहीं लगता है। भोजन में कुछ भी विलम्ब सहन नहीं कर सकता है। इस प्रकार से जब पूर्व संस्कारवश माला चन्दन भार्यपुत्र गृह क्षेत्र में जाने वाले मन को जिस अन्तःकरणनिवृत्ति विशेष के द्वारा निग्रहण किया जाता है उसी प्रकार का वृत्ति विशेष शम कहलाता है। फिर ज्ञानसाधन भिन्न शब्द स्पर्श रूपसरादि विषयों से श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों का जिस वृत्ति विशेष के द्वारा निग्रहण किया जाता है। वह वृत्तिविशेष दम कहलाता है। शम तथा दम जिस पुरुष के द्वारा साध लिए जाते हैं। उस स्थितिप्रज्ञ पुरुष के पास में ब्रह्मज्ञानमार्ग खुल जाता है। इसलिए श्री मद्भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है-

“यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥” (2/48) इति।

उपरति से तात्पर्य है निगृहीतबाह्येन्द्रिय तथा मन का आत्मविषयक श्रवणादियों में स्थिरीकरण करना तथा विहित नित्यकर्मादियों विधि से परित्याग करना। यहाँ पर सर्वकर्मसन्त्यास ही इष्ट होता है। सभी और से निवृत्त चित्त पुरुष सुखदुःखशीतोष्णप्रेमघृणादि में, देहादियों में तथा अनात्मवस्तु युक्त धर्मों में उदासीन होता है। शीतोष्णद्वन्द्वसहिष्णुता ही तितिक्षा है। आत्मा के विषय में अनवरत चिन्तन ही समाधि अर्थात् समाधान है। गुरु के द्वारा जो उपदिष्ट वेदवाक्य है, उन वाक्यों में विश्वास ही श्रद्धा है। ब्रह्मविद् गुरु उस प्रकार के शिष्य के लिए तत्त्वमसि आदि वाक्यों का उपदेश करता है। इनमें श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए। कारण यह है कि यदि श्रद्धा नहीं है तो कार्य की सफलता भी प्राप्त नहीं होती है। इसलिए ही भगवान्

श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है-

“अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥” (17/28) इति।

19.5) अहं आकार वृत्ति

उसके बाद शिष्य की मै नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्य स्वभाव वाला परमानन्दाननताद्वयं ब्रह्म हूँ इस प्रकार की अखण्डाकार चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। परमात्मा के रूप में मैं हमेशा ही विद्यमान हूँ इस प्रकार से शिष्य को अनुभव होता है। मेरा जन्म नहीं होता है, मेरा विनाश नहीं होता है, अज्ञान नहीं है, दुःखों का स्पर्श भी नहीं है, संसार में कुछ भी नानात्व नहीं है इस प्रकार से शिष्य को अपरोक्षानुभव होता है। कारण यह है कि ब्रह्म अपरोक्षस्वभाव वाला होता है। इसलिए बृहदारण्यकोपनिषद में भी कहा गया है। “यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म” (3/4/1) इति। इसलिए शिष्य का अनुभव अपरोक्ष ही होता है। अब संशय होता है कि इन्द्रियजन्य ज्ञान ही प्रत्यक्ष होता है। शब्द तो अपरोक्ष ज्ञान का जनक मात्र होता है। यदि शब्द प्रत्यक्ष ज्ञान का जनक होता तो ‘पर्वत पर आग है’ इस वाक्य से अग्नि का प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न हो जाए। लेकिन इस वाक्य से अग्नि का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। इस प्रकार से संशय होने पर अद्वैतवादी कहते हैं की प्रत्यक्षज्ञान केवल इन्द्रिय निर्भर नहीं होता है अपितु वह विषय निर्भर होता है। इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष स्वीकार करते हैं तो सुखदुःखादि जिस प्रकार से प्रत्यक्ष होता उसी प्रकार सुखदुःखादि की स्मृति भी प्रत्यक्ष होती है इस प्रकार से अङ्गीकार करना चाहिए। वायु रूप हीन होती है। इसलिए वायु का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता है। घट का रूप भी रूपहीन होता है। कारण यह है कि यदि रूप का रूप स्वीकार करें तो अनवस्थादोष हो जाएगा। घटरूप घटगतसंख्या चाक्षुष प्रत्यक्ष होती है। इस प्रकार स्वीकार किया गया है। इसलिए कौन-सी वस्तु प्रत्यक्ष होती है कौन-सी नहीं होती है। यहाँ पर वस्तु स्वभाव ही नियामक होता है। शब्द भी कुछ अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न करने में सक्षम होता है। जैसे दस लोग नदी को पार करके उसके दूसरे तट पर पहुँच जाते हैं। हम लोग दस ही हैं क्या इसका निर्णय करने के लिए उनमें से कोई सभी की गणना करता है। लेकिन वह अपने को छोड़कर के नौ जनों को ही गिनता है। तब वह सोचता है कि अविशिष्ट दसवां व्यक्ति कहाँ पर है तब उनमें से ही कोई व्यक्ति कहता है कि दसवां तुम हो। तब उसको ज्ञान हो जाता है कि दसवां मैं ही हूँ। उसके बाद वे दस लोग आनन्द से जाते हैं। इस प्रकार से शब्द समूह भी अपरोक्ष ज्ञान का जनक होता है।

19.6) मन का अनिन्द्रियत्व

ब्रह्म इन्द्रियगोचर नहीं होता है। बृहदारण्योपनिषद में कहा गया है कि ““मनसैवानुद्रष्टव्यम्” (4/4/1९) अर्थात् मन के द्वारा ब्रह्म का दर्शन करना चाहिए। अन्नम्भट्ट ने तर्क संग्रह में कहा है कि “सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः” इस प्रकार से तथा श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है कि

“ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥” (15/7) इति।

इस श्रुति में इन्द्रियों से अलग मन का ग्रहण किया गया है। इन्द्रियों से भी विषय श्रेष्ठ होते हैं। और विषयों से मन श्रेष्ठ होता है। मन से बुद्धि श्रेष्ठ होती है तथा बुद्धि से महान् आत्मा श्रेष्ठ होती है। अनिन्द्रिय शमदमादि के संस्कृत से शुद्ध मन से ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है। इस शङ्कराचार्य के द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्य में कहा गया है कि “शास्त्राचार्योपदेशजनितशमदमादिसंस्कृतं मनः आत्मदर्शने करणम्” (2/21) इति।



ध्यान दें:

महावाक्य तात्पर्य विचार



ध्यान दें:

19.7) ब्रह्मज्ञान का अज्ञाननाशकत्व

अब कहते हैं कि अद्वैतवेदान्त में ब्रह्म निर्विशेष तथा निराकार होता है। और निराकार ब्रह्म का आकार धारण करना अयुक्त है। इस प्रकार से संशय होने पर समाधान बताते हैं कि अखण्डाकार चित्तवृत्ति यहाँ आकार शब्द के स्वार्थ में तात्पर्य नहीं होता है। और भी बहुत सारी वृत्तियाँ होती हैं। उन वृत्तियों के परस्पर भेद दर्शन के लिए आकार शब्द प्रयुक्त हुआ है। जो जिस विषय अज्ञान की निवर्तिका होती है वह वृत्ति तद्विषयाकार ही हो जाती है। जो वृत्ति घटविषयक अज्ञान का नाश करती है। वह वृत्ति घटाकार होती है। इसलिए यहाँ अखण्डाकारवृत्ति अखण्डब्रह्म के साथ सम्बन्धवश चित्त का परिणाम विशेष होती है। अखण्डाकार वृत्ति ही अखण्डब्रह्म गत अज्ञान का नाश करती है। वृत्ति जड होती है। इसलिए वृत्ति स्वयं अज्ञान का नाश नहीं कर सकती है। चैतन्यप्रतिबिम्बयुक्त वृत्ति होने पर ही वह अज्ञान का नाश करने में समर्थ होती है। निर्मल अन्तःकरण में जब चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। तब अन्तःकरण प्रकाश होता हुआ अज्ञान का नाश करता है। वस्तुतः चैतन्य ही अज्ञान का नाशक होता है। लेकिन अज्ञान स्वयं ही नष्ट नहीं होता है। अपितु वृत्ति के माध्यम से ही अज्ञान का नाश होता है। जैसे सूर्य का आतप स्वयं तृणादि का नाशक नहीं होता है। सूर्यकान्तमणि में प्रतिफलित होता हुआ तृणादि का नाश करने में समर्थ होता है। इस समय संशय जड होती है चित्त प्रतिबिम्ब युक्त होने पर अज्ञान तथा अज्ञान के कार्य का नाश करती है। उसके बाद वह वृत्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए वृत्ति के नाशकान्तर के अभाव से वृत्ति तो रुकती ही है। अतः मोक्ष की दशा में भी वृत्ति के विद्यमान होने पर भी एक ही अद्वितीय तत्व अनुपपन्न होता है। इस प्रकार से संशय होने पर समाधान कहा जाता है की पट का उपादान कारण तन्तु होते हैं। तन्तु के दग्ध होने पर तन्तुकार्य पट भी दग्ध हो जाता है। एक ही प्रपञ्चरूप अखिल कार्य का कारण अज्ञान नष्ट होता है तो अज्ञान के कार्यों का भी नाश हो जाता है। वृत्ति भी अज्ञान का कार्य ही होती है। इसलिए अज्ञान का नाश होने पर अज्ञान कार्य वृत्ति का भी नाश हो जाता है। जडपदार्थ के आकार से आकारित चित्तवृत्ति अखण्डवृत्ति के साथ भिदती है। जैसे यह घट है, यहाँ पर घटाकार चित्तवृत्ति अज्ञानविषयीभूत चैतन्य विषयीकृत होकर घटावच्छिन्न चैतन्यगत अज्ञान का नाश करके स्वगत चिदाभास से जड घट का प्रकाश करता है। इसलिए पञ्चदशी में कहा गया है कि

“बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वावपि व्याप्नुतो घटम्।

तत्राज्ञानं धिया नश्येत् आभासेन घटः स्फुरेत्॥” (7/91) इति।

इस श्लोक का यह अर्थ है की बुद्धि तथा बुद्धिस्थ चैतन्यप्रतिबिम्ब दोनों घट में व्याप्त हो जाते हैं। वहाँ पर घटवृत्ति से घट रूपी अज्ञान का नाश होता है। फिर प्रतिबिम्ब के द्वारा घट प्रकाशित होता है। जैसे दीपक प्रकाश में अन्धकार में विद्यमान घट विषयी कृत होकर घट का नाश करता है। उसी परम आलोक के द्वारा घट प्रकाशित होता है।

अब कहते हैं कि वृत्ति के नाश हो जाने पर वृत्तिजन्य चिदाभास तो रुकता ही है। अज्ञान के नष्ट हो जाने पर चैतन्य मात्र तो रुकता है। वह चैतन्य न तो कार्य होता है और ना ही कारण। इसलिए वह चैतन्य चिदाभास का नाश नहीं कर सकता है। इस प्रकार से अद्वैत की हानि होने पर वह नहीं होता है। अन्त में स्वाश्रित काष्ठखण्ड का नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार चिदाभास भी अखण्ड ब्रह्मगत अज्ञान का नाश करके अन्त में स्वयं भी निवृत्त हो जाता है। फिर उपाधि का नाश होता है तो प्रतिबिम्ब बिम्ब के रूप में ही रहता है। जैसे दर्पण विनष्ट होता है तो दर्पणस्थ मुखप्रबिम्ब बिम्ब के साथ अभिन्न होता है। एक ही वृत्ति जब नष्ट होती है तो तब चैतन्य प्रतिबिम्ब बिम्बभूत चैतन्य के साथ अभिन्न होता है। बिम्बभूत चैतन्य का कभी भी नाश नहीं होता है। इसलिए ही सिद्धान्तलेश सङ्ग्रह में कहा गया है कि “अविनाशी वा अरे अयमात्मा इति श्रवणं जीवस्य तदुपाधिनिवृत्तौ प्रतिबिम्बभावापगमे अपि स्वरूपं



ध्यान दें:

न विनश्यति इत्येतत्परं न तदतिरिक्तकूटस्थनामचैतन्यान्तरपरम्” इस प्रकार से प्रतिबिम्ब की बिम्ब के अनुसार कोई भी सत्ता नहीं होती है। इसलिए अद्वैततत्त्व उपपन्न होता है। यहाँ पर यह जानना चाहिए की चिदाभास चैतन्यस्वरूप ब्रह्म प्रकाश करने में समर्थ नहीं है। जैसे दीप की प्रभा सूर्य की प्रभा को प्रकाशित करने में समर्थ नहीं है। ब्रह्म स्वयं प्रकाशमान होता है। इसलिए ब्रह्म का प्रकाश करने के लिए चिदाभास का उपायोग नहीं होता है। इसलिए विद्यारण्य स्वामी ने पञ्चदशी में कहा है।

“ब्रह्मणि अज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता।

स्वयंस्फुरणमात्रत्वान्नाभास उपयुज्यते॥” (7/92) इति।

ब्रह्म ही सब को प्रकाशित करता है। इसलिए मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है।

“न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥” (2/2/10) इति।

जो सूर्य सभी को प्रकाशित करता है। वह सूर्य भी ब्रह्म में प्रकाशित नहीं होता है। अर्थात् वह सूर्य ब्रह्म को प्रकाशित नहीं कर सकता है। अपितु ब्रह्म का प्रकाश ही सूर्यादि सभी को प्रकाशित करता है। उसी के ही प्रकाश से सभी प्रकाशमान होते हैं। ब्रह्म ही यहाँ अहं पद के द्वारा परिलक्षित होता है। विद्यारण्य स्वामी के द्वारा पञ्चदशी में कहा गया है।

“परिपूर्णः परमात्मास्मिन् देहे विद्याधिकारिणि।

बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्हमितीर्यते॥”

स्वतःपूर्णः परमात्मात्र ब्रह्मशब्देन निगदितः।

अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम्॥” (5/3,4) इति।

इन दोनों श्लोकों के अर्थ के अनुसार तो देश काल तथा वस्तु से अपरिच्छिन्न आत्मा होता है। उस प्रकार का सभी जगह पर ही व्याप्त परमात्मा माया कल्पित इस जगत में विद्या लाभ योग्य श्रवणमनन निदिध्यासना अनुष्ठित मनुष्यादि शरीरों में साक्षी के रूप में स्थित होकर के हमेशा प्रकाशमान होता हुआ रुकता है। उक्त श्लोक के द्वारा सूक्ष्म शरीर को कहा गया है। “अहं ब्रह्मास्मि” (बृहदारण्यकोपनिषद्-1/4/10) यहाँ पर अस्मि इस पद से जीव तथा ब्रह्म के एक्य को सूचित किया गया है।



पाठगत प्रश्न 19.1

1. ऋग्वेद का महावाक्य कौन-सा है?
2. यजुर्वेद का महावाक्य कौन-सा है?
3. छः प्रकार के लिङ्ग कौन-कौन हैं?
4. मन तथा इन्द्रियों की यहाँ पर कौन-सी श्रुति है?
5. अर्थवाद किसे कहते हैं?
6. महावाक्य किसे कहते हैं?
7. अरोक्ष स्वभाव वाल ब्रह्म होता है यहाँ पर क्या श्रुति है?
8. उपनिषद् इस शब्द का क्या अर्थ है?
9. देश काल वस्तु के द्वारा क्या परिच्छिन्न नहीं होता है?

महावाक्य तात्पर्य
विचार

ध्यान दें:



पाठ सार

सभी उपनिषदों का ब्रह्म में ही तात्पर्य होता है। जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादन ही वेदान्त का विषय है। सब कुछ यह ब्रह्म ही होता है समस्त संसार इसी से ही उत्पन्न हुआ है। इस जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से ही होती है। जगत् की स्थिति ब्रह्म में ही होती है। जगत् का लय भी ब्रह्म में ही होता है। पुरुषार्थ चार होते हैं। उनमें परमपुरुषार्थ मोक्ष होता है। उपनिषद् प्रतिपाद्य मोक्ष स्वरूप ब्रह्म ही होता है। प्रसिद्ध उपनिषदों के मध्य ऋग्वेद के ऐतरेयोपनिषद् में “प्रज्ञानं ब्रह्म” इस प्रकार का महावाक्य है। प्रज्ञान शब्द से यहाँ पर चैतन्य को कहा गया है। वह चैतन्य ही सभी जगह अनुस्यूत रहता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में “अहं ब्रह्मास्मि” यह महावाक्य है। महावाक्य जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित करते हैं। निर्विशेष निरवयव प्रकाशस्वरूप ब्रह्म ही होता है। ब्रह्म का ही प्रकाश सभी को प्रकाशित करता है। सूर्य तथा चन्द्र भी ब्रह्म से ही प्रकाशित होते हैं। वह ब्रह्म हम सभी के द्वारा प्राप्तव्य है। इसलिए ब्रह्म प्राप्ति के लिए ब्रह्मज्ञ गुरु के पास जाना चाहिए। कारण यह है की गुरु ही अज्ञान का नाश करता है। विद्या प्राप्ति के लिए जिस प्रकार से इष्टदेव की आराधना की जाती है, उसी प्रकार गुरु की आराधना भी विद्या प्राप्ति के लिए की जाती है। विद्या के द्वारा अमृत की प्राप्ति होती है। अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है। अद्वैत में मुक्ति दो प्रकार की होती है। जीवन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति। अखण्ड ब्रह्मज्ञान के द्वारा ब्रह्मविषयक अज्ञान का नाश होता है। तब ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर अज्ञानादिकार्य प्रपञ्चादि संशय विपर्यय आदि का बोध होता है। उसके बाद पुरुष सर्वबन्धनरहित होता हुआ ब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्त हो जाता है। इस प्रकार से मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है।

“भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥” (2/2/9) इति।

अविद्या तथा वासनामय जो काम होते हैं। उन कामों के ज्ञेय विषय में विद्यमान संशयों का नाश ब्रह्मनिष्ठ पुरुष का होता है। फिर उस जीवन्मुक्त पुरुष की ज्ञानोत्पत्ति के लिए पूर्व में जो कर्म किये हैं जन्मान्तरों में जो कर्म फल देने में अप्रवृत्त होते हैं, उनके कर्मों का नाश होता है। वह जीवन्मुक्त पुरुष इच्छा के द्वारा अनिच्छा के द्वारा, परेच्छा के द्वारा प्रारब्धकर्मों के फलों का अनुभव करता है। जब प्रारब्ध कर्मों का क्षय हो जाता है तब आनन्दस्वरूप परब्रह्म में उसके प्राणों का लय हो जाता है। उसके बाद उस पुरुष के भेदज्ञानशून्य होने पर परमकैवल्यरूप अखण्डब्रह्म में अवस्थान होता है। यह ही विदेह मुक्ति कहलाती है। इस प्रकार से हमें अज्ञान का नाश करना चाहिए। अज्ञान सत् तथा असत् के द्वारा अनिर्वचनीय होता है। और अज्ञान ज्ञानविरोधि सत्त्वरजतमगुणात्मक होता है। जब उस अज्ञान का नाश होता है उसी क्षण में ब्रह्मज्ञान होता है। जब चित्त निर्मल हो जाता है तब उस प्रकार का शुद्ध चित्त ब्रह्मज्ञान के प्रति कारण होता है। ब्रह्म अखण्ड होता है। खण्ड भेद को कहते हैं। भेद तीन प्रकार का होता है। स्वगत सजातीय तथा विजातीय। स्वयं आत्मा से प्राप्त भेद स्वगत भेद होता है। वृक्ष के साथ वृक्ष का जो भेद होता है वह सजातीय भेद होता है। वृक्ष के साथ शिलादि का जो भेद होता है वह विजातीय भेद कहलाता है। इस प्रकार से भेदत्रय रहित ब्रह्म होता है। वह ब्रह्म साक्षी होता हुआ विराजमान रहता है। गुरु जब तत्त्वसि इस वाक्य का उपदेश करता है तब शुद्धचित्त शिष्य की अखण्डाकार चित्तवृत्ति का उदय होता है। वह चित्तवृत्ति अखण्डब्रह्मगत अज्ञान का नाश करके अन्त में स्वयं भी नष्ट हो जाती है। जैसे अग्नि सभी का नाश करके अन्त में स्वयं भी उपशान्त हो जाती है। अर्थात् अखण्ड ब्रह्म में ही सबकुछ पर्यवसित होता है।

आपने क्या सीखा

1. अज्ञान का नाशक गुरु होता है।
2. अद्वितीय ब्रह्मज्ञान का अद्वितीयब्रह्म की प्राप्ति ही फल है।

3. महावाक्य जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं।
4. ब्रह्म के नौ तटस्थ लक्षण कौन-कौन से हैं?
5. अज्ञान के नाश के लिए ब्रह्म में वृत्तिव्याप्ति अपेक्षित है।
6. प्रतिबिम्ब के बिम्ब को छोड़कर और कोई भी सत्ता नहीं है।
7. ब्रह्म स्वयं प्रकाश रूप होता है।
8. सभी उपनिषदों का जीव तथा ब्रह्म ऐक्य प्रतिपादित ही तात्पर्य है।
9. ब्रह्म में ही जगत की उत्पत्तिलय संभव है।



पाठान्त प्रश्न

1. “प्रज्ञानं ब्रह्म” यहाँ पर प्रज्ञान शब्द के अर्थ का प्रतिपादन कीजिए।
2. “अहं ब्रह्मास्मि” यहाँ पर अहं पद के अर्थ का आलोचन कीजिए।
3. मन इन्द्रिय होता है इसके पूर्वपक्ष का उपस्थापन कीजिए।
4. गुरु के महात्म्य का वर्णन कीजिए।
5. उपक्रम तथा उपसंहार को उदाहरण के द्वारा प्रतिपादन कीजिए।
6. “अहंवाद” किसे कहते हैं?
7. परम पुरुषार्थ क्या है?
8. अर्थवाद का उदाहरण बताइए?
9. फल क्या होता है अहं ब्रह्मास्मि यहाँ पर पञ्चदशीकार के द्वारा उक्त ब्रह्म के अर्थ को लिखिए।
10. छः प्रकार के लिङ्ग कौन-कौन से होते हैं?
11. मन इन्द्रिय नहीं होता है यहाँ पर सिद्धान्तियों का मत लिखिए।
12. अभ्यास किसे कहते हैं?
13. अखण्ड ब्रह्म किसे कहते हैं?
14. छान्दोग्योपनिषद् में कथित अभ्यास वाक्य क्या है?
15. अखण्डाकारिता चित्तवृत्ति यहाँ पर आकार शब्द का क्या तात्पर्य है।
16. अपूर्वता किसे कहते हैं।
17. ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कीजिए?
18. फलरूप के लिङ्ग का एक उपनिषद् वाक्य लिखिए।
19. ब्रह्म ही सभी को प्रकाशित करता है यहाँ पर उपनिषद् वाक्य क्या है?
20. अर्थवाद किसे कहते हैं?

महावाक्य तात्पर्य विचार



ध्यान दें:

महावाक्य तात्पर्य
विचार



ध्यान दें:

21. परमपुरुषार्थ क्या है?
22. अर्थवाद का उदाहरण दीजिए।
23. फल किसे कहते हैं?



पाठगत प्रश्नों के उत्तर 19.1

1. प्रज्ञानं ब्रह्म” इति।
2. “अहं ब्रह्मास्मि” इति।
3. उपक्रम उपसंहार, अभ्यास,अपूर्वता,फल, अर्थवाद, उपपत्त इस प्रकार से यह छ लिङ्ग होते हैं।
4. “इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः” इति कठोपनिषद् में यह श्रुति है।
5. प्रकरण में प्रतिपाद्य वस्तु के प्रतिपाद्य स्थल में प्रशंसा अर्थवाद कहलाती है।
6. छ प्रकार के तात्पर्यलिङ्गोपेत वाक्य महावाक्य किस प्रकार से कहलाता है।
7. “यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म” यह बृहदारण्यकोपनिषद् में बताया गया है।
8. इसका अर्थ रहस्य होता है।
9. परमब्रह्म परिच्छिन्न नहीं होता है।